संजीव कृत 'फांस' उपन्यास में अभिव्यक्त पर्यावरण

डॉ.रत्नेश कुमार यादव
सह आचार्य
हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग, जम्मू केन्द्रीय विश्वविद्यालय,राया-सुचानी,(बागला) जिला, साम्बा जम्मू एवं कश्मीर -181143 ई-मेल- ratnesh.hnd@cujammu.ac.in, दूरभाष - 9560046944
शिवम
शोध-छात्र
हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,जम्मू केन्द्रीय विश्वविद्यालय,राया-सुचानी,(बागला) जिला, साम्बा जम्मू एवं कश्मीर -181143

शोध सार : पर्यावरण समूचे विश्व को स्वयं के आवरण में संजोये हुए है। समस्त चराचर इसमें व्याप्त है। इसलिए जब पर्यावरण का दोहन होने लगा तो इसका प्रभाव लगभग पूरे विश्व में देखा जाने लगा। अंटार्कटिका जो मानव-विहीन क्षेत्र है, वह भी इसके चपेट में आ गया। वहां के महासागरीय ग्लेशियर तेजी से पिघल रहे हैं। जिससे ज्ञात होता है कि वहां का तापमान भी तेजी से बढ़ रहा है। आज पर्यावरण के असंतुलन से मौसम तथा जलवायु में तेजी से परिवर्तन होता जा रहा है। इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि पहाड़ों में मार्च के महीने में फूलने वाला 'बुरांश' तथा इसी महीने पकने वाला 'काफल' नामक फल इस वर्ष असमय ही जनवरी में तैयार हो गये। इसके अतिरिक्त आज प्राणी जगत तथा वनस्पति जगत की अनेक प्रजातियाँ या तो संकटापन्न स्थिति में हैं या लुप्तप्राय: मान ली गयी हैं। ये हमारे पर्यावरण असंतुलन का स्पष्ट संकेत दे रहा है। जिसकी ओर ध्यान दिया जाना आवश्यक है, अन्यथा सम्पूर्ण पृथ्वी के जीवों का अस्तित्व खतरे में पड़ जायेगा।

बीज शब्द : पर्यावरण, ग्लोबल वार्मिंग, पारिस्थितिकी, पारिस्थितिक तंत्र, खाद्य-श्रृंखला, वायुमंडल, ग्लेशियर, महासागर।

मूल आलेख: पर्यावरण की अवधारणा बहुत ही विस्तृत है। यह शब्द परि+आवरण के योग से बना है, जिसका अर्थ है हमारे आस-पास का ऐसा आवरण जिसने पृथ्वी को चारों ओर से ढका हुआ है। इसके अंतर्गत वे सभी तत्त्व आते हैं, जो धरती को जीवन योग्य बनाते हैं। पर्यावरण की इस विस्तृत परिधि के केंद्र में प्रकृति है, जिसमें हवा, पानी, मिट्टी, के साथ ही सभी जैविक और अजैविक तत्त्व शामिल होते हैं। प्रकृति का मानव से अत्यंत पुरातन संबंध है। मनुष्य के अस्तित्व में आने के बाद वह सर्वप्रथम प्रकृति से ही साक्षात्कार करता है, वही उसकी आश्रयदाता बनती है। उसी के वृक्षों के फल तथा कंद-मूल उसका भोजन बनते हैं तथा उसी की कन्दराएँ तथा गुफाएं उसका निवास बनते हैं। इसी कारण प्रकृति को 'मनुष्य की माता' भी कहा गया है। प्रकृति का भारतीय संस्कृति में बहुत महत्त्व रहा है। ऋषि-मुनि अपनी साधना हेतु ऐसे स्थान के खोज में रहते थे जहाँ उन्हें एकांत के साथ ही शान्ति का अनुभव भी हो जिसके लिए वह प्रकृति का आश्रय उत्तम समझते थे। अतः वे अपने निवास-स्थान के रूप में नदियों के सुरम्य तटों को तथा उनके किनारे अवस्थित वनों को बनाते थे। जिस कारण वेदों, उपनिषदों, आरण्यकों आदि में वनों के महत्त्व के साथ ही मानव स्वास्थ्य हेतु पर्यावरण को महत्त्व दिया गया है। हजारी प्रसाद द्विवेदी जी अपने निबंध 'कुटज' में इस धरती के प्रति मातृ प्रेम दर्शाते हुए कहते हैं – " यह धरती मेरी माता है और मैं इसका पुत्र हूँ। इसलिए मैं सदैव इसका सम्मान करता हूँ और मेरी धरती माता के प्रति नतमस्तक हूँ।"1जब तक मनुष्य में प्रकृति के प्रति भावनात्मक संबंध रहा, वह अपना समय सुखपूर्वक व्यतीत करता रहा परन्तु जब मनुष्य प्रकृति का दोहन अपने लालच तथा स्वार्थ सिद्धि हेतु करने लगा, पर्यावरण का ह्रास होने लगा। पर्यावरण का यह ह्रास मनुष्य के अलावा जीव-जंतुओं, वनस्पति जगत तथा जलीय जीव-जंतुओं, सभी को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है। आज निरंतर वनों के कटाव ने न सिर्फ वायु की गुणवत्ता को प्रभावित किया है अपितु भूमि के अपरदन में भी अपना योगदान दिया है। जंगलों के काटे जाने से वन्य जीवों का आश्रय छिन रहा है साथ ही वायुमंडल में कार्बनडाई ऑक्साइड की मात्रा में भी वृद्धि हो रही है। जिसके कारण ऑक्सीजन की कमी आ रही है क्योंकि वृक्ष ही कार्बनडाई ऑक्साइड को अवशोषित करके हमें ऑक्सीजन प्रदान करते हैं। इसके अतिरिक्त पृथ्वी पर क्लोरो-फ्लोरो-कार्बन तथा मीथेन गैस की निरंतर वृद्धि होने के कारण आज सम्पूर्ण विश्व 'ग्लोबल वार्मिंग' की चपेट में आ चुका है। जिसके परिणामस्वरूप ग्लेशियर तेजी से पिघल रहे हैं। इसके कारण ही जलीय पारिस्थितिकी भी नकारात्मक रूप से प्रभावित हो रही है। जंगलों के निरंतर कम होने के कारण मौसम में लगातार परिवर्तन देखा जा रहा है। कभी सर्दी का समय संकुचित हो रहा है, कभी मई के महीने में पहाड़ी क्षेत्रों में हिमपात हो रहा है, तो कभी दिसंबर के महीने में भारी बारिश। जिसके कारण कई बार अतिवृष्टि का सामना करना पड़ता है तो कहीं असमय सूखे की मार झेलनी पड़ती है। इससे कभी नदियों का स्तर बहुत कम होता जा रहा है तो कभी भयंकर बाढ़ से सामना हो रहा है। आज मनुष्य की स्थिति बहुत शोचनीय हो गयी है। उसके पास न शुद्ध पीने का जल है न सांस लेने के लिए शुद्ध वायु। ओजोन परत में बना हुआ होल लगातार बड़ा हो रहा है। जिससे बचाव हेतु पर्यावरण में सुधार लाना आवश्यक है।

पर्यावरण प्रदूषण की समस्या भारत में बीसवीं सदी के अंतिम दशक से देखने को मिलती है। इस सदी में भारत में अनेक कारखाने लगे, वैज्ञानिक प्रगति हुई तथा प्राकृतिक संसाधनों का दुरुपयोग बढ़ा। निरंतर जनसंख्या की वृद्धि, जंगलों का दोहन और औद्योगीकरण के फैलते प्रदूषण ने समस्त प्राणी जाति को खतरे में डाल दिया है। हरीश अग्रवाल जी पर्यावरण-प्रदूषण के मानव जीवन पर पड़ते प्रभावों को इंगित करते हुए कहते हैं – " जब से ओजोन पट्टी के ह्रास के बारे में पता चला है और अविलम्ब खतरे की घंटी बजी है, तब से विश्व की

सरकारें हरकत में आ गई हैं। लोगों के सामने त्वचा कैंसर, फसलों की हानि, मोतिया बिंद बढ़ने जैसे खतरे मंडराने लगे हैं।"[2] आज हिंदी साहित्य के लेखक पर्यावरण-प्रदूषण की समस्या से समाज को जागरूक करने के लिए भरसक प्रयास कर रहे हैं। वे न सिर्फ इस समस्या के कुप्रभावों को दर्शाते हुए समाज को सचेत कर रहे हैं अपितु इस समस्या के बचाव के संभावित प्रयासों की ओर भी जनता का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं। आज कविता, निबंध, नाटक, कहानी के अलावा उपन्यास विधा में भी पर्यावरण के प्रति चेतना को प्रसारित करने का भरपूर प्रयास किया जा रहा है। नासिरा शर्मा के उपन्यास 'कुइयाँजान' में जल संकट का विस्तार से वर्णन किया गया है तो महुआ माझी के उपन्यास 'मरंग गोडा नीलकंठ हुआ' में 'मरंग गोडा' क्षेत्र में स्थित यूरेनियम से निकलने वाली रेडिएशन के भयंकर प्रभावों का वर्णन किया गया है तो भगवती शरण मिश्र के उपन्यास 'लक्ष्मण-रेखा' के माध्यम से उपन्यासकार कहते हैं कि हर चीज़ की एक सीमा होती है। उस सीमा का उल्लंघन हमें विनाश की ओर ले जाता है और यही बात पर्यावरण के सन्दर्भ में भी है। यदि प्रकृति के द्वारा दिए जा रहे खतरे के संकेतों के बाद भी मनुष्य सचेत नहीं हुआ तो उसका विनाश निश्चित है। इसी परम्परा में उपन्यासकार संजीव का उपन्यास 'फांस' भी आता है, जिसका मुख्य विषय तो सम्पूर्ण भारत में किसानों के ऋण में दबे होने पर की जाने वाली आत्महत्याएं तथा तत्कालीन सरकार की किसानों के लिए लागू नीतियों का वर्णन किया गया है। इस उपन्यास का केंद्र महाराष्ट्र के विदर्भ प्रांत के 'यवतमाल' क्षेत्र को बनाया गया है। जिसमें पहले तो किसानों को देशी किस्म के बीज बोने की अपेक्षा विदेशी उन्नत किस्म के बीजों की खेती करने का प्रलोभन देकर कर्ज दिया जाता है परन्तु सूखे की मार तथा अतिवृष्टि के कारण भोले-भाले किसान ऋण के बोझ तले दब जाते हैं। इस सब से उबर कर भी जब किसान अपनी बची-खुची फसल लेकर फसल मंडी में जाते हैं, तो उसे दलाल मामूली कीमत पर खरीदकर किसानों का शोषण करते हैं। इस तबाही में किसानों का आत्मबल गिरता गया और अंत में वे आत्महत्या करने को विवश हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त इसमें यह भी बताने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार विकास के नाम पर आदिवासियों से उनका सब कुछ छीन लिया गया। वह जंगल में तो रहते हैं परन्तु बिना सरकार की अनुमति के पेड़ों के फलों, फूलों तथा पत्तियों पर उनका कोई अधिकार नहीं है।

'फांस' उपन्यास का सूक्ष्मता से अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि इसमें किसानों की बर्बादी के साथ ही पर्यावरण की अनेक समस्याओं को भी चित्रित करने का प्रयास किया गया है। इन समस्याओं के समाधान को दर्शाने का भी लेखक ने यथासंभव प्रयास किया है। इस क्षेत्र के किसानों को अधिक पैदावार करने के लिए उन्नत किस्म के विदेशी बीज दिए जाते हैं। उन बीजों के उचित पोषण के लिए रासायनिक उर्वरक देना पड़ता है। जो किसानों की आर्थिक समस्याओं को बढ़ाने के साथ ही प्रकृति प्रदत्त खाद्य-श्रृंखला तथा पारिस्थितिक तंत्र को भी प्रभावित करने का प्रयास करता है। इस उपन्यास की पात्र 'कलावती' के माध्यम से उपन्यासकार इस समस्या से हमें अवगत करवाते हैं – " मैं यहाँ दो बार पहले भी आ चुकी हूँ। मैंने उस सूखे नाले के पास झुण्ड की झुण्ड तितलियाँ देखी हैं, पीली-पीली और दूसरे रंगों की भी....। इस बार जब से आई हूँ, गौर कर रही हूँ कि अब उतनी तितलियाँ नहीं दिखतीं। वहां एक मधुमक्खी पालन का छोटा-सा प्रोजेक्ट है। वह भी विषाक्त हो रहा होगा।"[3] यह रसायन भूमि से मिलकर जहाँ मिट्टी को दूषित करते हैं वहीं भू-जल को भी खराब करते हैं, जिसके मानव-जीवन पर अनेक प्रभाव पड़ रहे हैं – "पानी में आर्सेनिक है या अत्यधिक कीटनाशक और खाद घुलकर उसे विषाक्त बना रहा है?....सरपंच लिख-लिखकर हार गये, होम्योपैथिक के डॉक्टरों का एक एन. जी. ओ. कैंप लगा-लगाकर हार गया। रोग के कारणों का पता न चल सका...।"[4] यह विदेशी उन्नत बीज अपने साथ अनेक परजीवियों तथा विषैले पौधों की अनेक किस्मों को भी साथ में लाया। जिसने हमारे अनेक औषधीय पौधों की किस्मों के विकास को अवरुद्ध करने का काम किया। परिणामस्वरूप आज जहाँ उन देशी औषधीय पौधों का अस्तित्व खतरे में है वहीं वे विदेशी पौधे ही सर्वत्र फैलते हुए दिखाई दे रहे हैं। उपन्यासकार इस समस्या को दर्शाते हुए कहते हैं – " मिलीबग नामक कीड़ा बी. टी. के आने के पहले भारत में नहीं देखा गया था। बी. टी. मिलीबग ले आया...वैसे ही जैसे पी एल 480 नाम के अमेरिकन गेहूं के साथ आया था जहरीला पौधा पर्थेनियम जो अब भारतीय हो गया है, नाम – 'गाजर घास'।"[5]

हरित क्रांति का उद्देश्य हमारे देश को अनाज के पैदावार की दृष्टि में समृद्ध करना था ताकि उसे अन्य देशों से अनाज खरीदना न पड़े। अतः इस कमी को पूरा करने के लिए कम समय तथा कम जमीन से, अधिकतम लाभ लेने का प्रयास किया गया। जिसके लिए मिश्रित फसलों को उगाना शुरू किया गया जैसे मक्का के साथ उरद तथा गेंहू के साथ मटर एवं सरसों इत्यादि। इनके पर्याप्त पोषण के लिए अधिक से अधिक रासायनिक उर्वरक प्रयोग में लाये जाने लगे। जिसके कारण पैदावार में तो आशातीत लाभ हुआ लेकिन इसके दूरगामी नकारात्मक प्रभाव देखने को मिले। इसका वर्णन उपन्यास में इस प्रकार से देखा जा सकता है – " सबसे पहले प्रचलित केमिकल कीटनाशकों के साथ दिक्कत यह है कि वे मिट्टी, पानी बीज में मिलकर हमारे संहारक सिद्ध हो रहे हैं। पंजाब और गुजरात के कितने ही किसान कैंसर और दूसरी बीमारियों से ग्रस्त हो चुके हैं।"[6]

कृषि उत्पादन में विज्ञान नित-नये प्रयोग कर रहा है, जिसका लाभ किसानों को सीधे रूप में हो रहा है। दो भिन्न गुणों के बीजों का आपस में परागण करवा के एक नई किस्म का निर्माण किया जाता है। जैसे कम फलन वाले रोग प्रतिरोधक बीज का परागण अधिक फलन परन्तु बीमारियों से प्रभावित बीज से करना। ताकि एक ऐसा संकर किस्म प्राप्त हो जो रोग प्रतिरोधक भी हो और अधिक पैदावार भी दे। इसका लक्ष्य किसानों के नुकसान को कम करना होता है। इसी के कारण भारत अनाज उत्पादन की दृष्टि से आत्मनिर्भर भी बना। परन्तु इसके कई नकारात्मक प्रभाव भी दिखाई देते हैं। ऐसा बीज हर बुवाई में नया खरीदना पड़ता है, तथा कई बार फसलों की अनुवांशिकी भी बुरी तरह से प्रभावित होती है। परिणामस्वरूप हमारे पारिस्थितिक तंत्र भी इससे अछूता नहीं रह पाता है– " एक पर्चे में एक वैज्ञानिक ने मटर के बीज में बीन के जीन डालकर उन्हें लम्बी फलियाँ बनाने के प्रयोग की चर्चा की थी। जिसके प्रयोग का परिणाम यह हुआ कि पूरी फली ही जहरीली हो गयी .....जेनेटिकिली मॉडिफाइड बीजों के साथ दिक्कत यह है कि हमें अक्सर पता नहीं होता कि कौन-सा भस्मासुर बना रहे हैं... कौन-सा जीन हमें बाँझ या नपुंसक बनाएगा और कौन-सा कैंसर, पार्किंसन, अल्जाइमर्स का रोगी।"[7]

नदियाँ किसी भी देश की आर्थिक समृद्धि का आधार होती हैं क्योंकि जहाँ एक और वे कृषि योग्य भूमि को जल उपलब्ध करवाती हैं तो वहीं दूसरी ओर वे प्राकृतिक सुन्दरता से भी सभी का मन मोह लेने में सक्षम होती हैं। जिसके कारण देश में पर्यटन को बढ़ावा मिलता है। जल की सहायता से सबसे सस्ती विद्युत बनती है। जनसंख्या वृद्धि होने के कारण बढ़ती विद्युत मांग की आपूर्ति हेतु अधिक से अधिक पनविद्युत परियोजनाएं बनाये जाने लगी। जिन्हें हमारे पहले प्रधानमंत्री ने "आधुनिक भारत का मंदिर" कह कर संबोधित भी किया था। परन्तु नदियों पर बाँध बन जाने से जल-भराव प्रभावित क्षेत्र की प्राकृतिक

संपदा, वन्यजीवों इत्यादि को भरी नुकसान झेलना पड़ा। साथ ही उस सम्पूर्ण क्षेत्र की खाद्य-श्रृंखला भी बुरी तरह से प्रभावित हुई – " इस 1970 में मध्यप्रदेश में एक डैम बनाकर पन-बिजली बनाकर सरकार ने हमारा भला करना चाहा। हमने देखा इससे तो डूब और कटाव में हमारा आधार जंगल ही तहस-नहस हो जाएगा।"[8]

वर्तमान समय में पर्यावरण एक अत्यंत चिंता का विषय है इसे गौरैया पक्षी के माध्यम से समझा जा सकता है। गौरैया जिसे 'घरेलू चिड़िया' के नाम से भी जाना जाता है, मनुष्य से अभिन्न रूप से जुडी हुई थी, क्योंकि इसका निवास मानव घरों के झरोखों में होता था। परन्तु आज वह बहुत कम घरों के आसपास दिखाई देती है। जिसका मुख्य कारण मोबाइल टावरों से निकलने वाली तरंगें मानी जाती हैं। आज मनुष्य इन्टरनेट का तीव्र से तीव्रतम रूप का उपयोग करना चाहता है परन्तु इस दौड़ में रहकर वह प्रकृति से कितना दूर होता जा रहा है। इसकी ओर ध्यान देना आवश्यक है – " धुएँ के कहर के अलावा खेती के प्रयोग में आने वाले कीटनाशक, मोबाइल टावर के रेडिएशन भी मधु मक्खियों और मित्र पक्षियों के संहारक हैं।"[9]

इस उपन्यास की यह सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें लेखक द्वारा समस्याओं के चित्रण के साथ ही समाधान को भी भलीभांति दर्शाया है। जल-संकट इस क्षेत्र की प्रमुख समस्या है। यह ऐसा क्षेत्र है जहाँ अनिश्चित सूखा पड़ता है और बिन मौसम भारी बारिश। लेखक ने इस बिन मौसम की वर्षा के पानी को छोटे-छोटे बाँधों के माध्यम से संरक्षित करने को कहा है। जिसके लिए वह अहमदनगर जिले के 'हिवरे बाज़ार' गाँव का उदाहरण देते हुए कहते हैं – " विदर्भ के किसानों की सबसे बड़ी समस्या है पानी.....गाँव के बाहर हर पहाड़ी ढलान पर बारिश के पानी को रोका गया। छोटे-बड़े स्टॉप डैम बना के। घर-घर में सॉक पिट बने। 10 लाख पौधे रोपे, परिणाम – भू-जल स्तर 100 फीट से ऊपर उठाकर 20 से 40 फीट पर आ गया।"[10] लेखक कहते हैं कि जहाँ उर्वरक तथा कीटनाशक खरीदने के लिए किसान को कर्ज लेना पड़ता है वहीं वह उर्वरक और कीटनाशक हमारे पर्यावरण को भी दूषित करते हैं इसलिए हमें इनके विकल्प में ऐसे जैविक उत्पादों का उपयोग कृषि में करना चाहिए। जिससे खेती के साथ-साथ पर्यावरण में भी लाभ हो – " कृषि वैज्ञानिक मल्टीनेशनल कीटनाशक कम्पनियों की अपनी नौकरी छोड़-छोड़कर आये हैं। ये गाँव-गाँव जाकर शेतकरी लोगों को जैविक तरीके से कीटनाशक बनाने का प्रशिक्षण दे रहे हैं..... हम सिर्फ कीटनाशक ही नहीं, खाद भी बनाते हैं।"[11]

उपरोक्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि 'फांस' उपन्यास में पर्यावरण पर सूक्ष्मता से विवेचन किया गया है। इस उपन्यास के माध्यम से यह भी बताने का प्रयास किया गया है कि मनुष्य का सर्वांगीण विकास तभी संभव है, जब हम विकास के हर पहलू का अध्ययन करके उसे तभी अपनाने का प्रयास करें जब वह पर्यावरण की दृष्टि से भी हितकर हो।

****

सन्दर्भ सूची :

1. द्विवेदी, हजारी प्रसाद. कुटज, पृ. सं. 32. राजकमल प्रकाशन।
2. अग्रवाल, हरीश. 'ओजोन हॉल की हकीकत'. जनसत्ता. 26 अगस्त, 2007
3. संजीव. फांस.पृ. सं. 169. वाणी प्रकाशन
4. संजीव. फांस.पृ. सं. 213. वाणी प्रकाशन
5. संजीव. फांस.पृ. सं. 189-190. वाणी प्रकाशन
6. संजीव. फांस.पृ. सं. 190. वाणी प्रकाशन
7. संजीव. फांस.पृ. सं. 202. वाणी प्रकाशन
8. संजीव. फांस.पृ. सं. 239. वाणी प्रकाशन
9. संजीव. फांस.पृ. सं. 189. वाणी प्रकाशन
10. संजीव. फांस.पृ. सं. 194. वाणी प्रकाशन
11. संजीव. फांस.पृ. सं. 191. वाणी प्रकाशन

जनजातीय विकास की रणनीतियाँ (मध्य प्रदेश के विशेष संदर्भ में)

डॉ. संजीव कुमार पाण्डेय
प्राचार्य
संस्कार विधि स्नातकोत्तर महाविद्यालय जिला-अनूपपुर (म.प्र.)

शोध सारांश:-
भारत सरकार के योजनाबद्ध प्रयासों ने देश में अनुसूचित जनजातियों के नागरिकों के समग्र विकास को गति दी है। इस रणनीति ने अनुसूचित जनजातियों की समस्याओं को पहचान करने के अलावा विभिन्न सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक पहल कदमियों के जरिए इनके निवारण का रास्ता भी तैयार किया है। सरकार ने इन सामाजिक और आर्थिक पहलकदमियों को अपनी योजनाओं और कार्यक्रमों के माध्यम से लागू किया है। लेकिन साथ ही, खासतौर से अनुसूजित जनजातियों के लिए उनकी भागीदारी पर एक आधारित एक ऐसी स्वशासन प्रणाली को लोकप्रिय बनाने की सख्त जरूरत महसूस की गई है जिसमें यह समुदाय अपने संसाधनों का प्रबंधन खुद कर सके। इस तरह की भागीदारी पर आधारित और जनजाति प्रबंधित विकास पक्रिया से अनुसूचित जनजातियों का सशक्तिकरण संभव होगा। शैक्षिक अवसंरचना में इस बात पर गौर किया जाना चाहिए कि परिवर्तनशील और प्रतिस्पर्धी दुनिया में किस तरह आधुनिक और आवश्यकता आधारित प्रशिक्षण और कौशल उन्नयन के जरिए अनुसूचित जनजातियों के युवाओं की दक्षता और ज्ञान को बढ़ाया जाए।

मुख्य शब्द:-जनजातीय, विकास, रणनीतियाँ, शैक्षिक, अवसंरचना, सामाजिक, आर्थिक, भागीदारी आदि।

प्रस्तावना:-
भारत में विभिन्न पंचवर्षीय और सालाना योजनाओं में जनजातियों के विकास पर जोर दिया गया है। लेकिन देश की अनुसूचित जनजातियों के विकास के मार्ग में चुनौतियाँ अब भी मौजूद हैं। इसका मुख्य कारण इस समुदाय की पारम्परिक जीवनशैली, दूरदराज के इलाकों में बसावट, बिखरी हुई आबादी और निरंतर विस्थापन है।
वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार देश की कुल आबादी में अनुसूचित जनजातियों का हिस्सा 8.6 प्रतिशत यानी 10.45 करोड़ है। अनुसूचित जनजातियों की आबादी का लगभग 92 प्रतिशत हिस्सा ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करता है। कुल आबादी में अनुसूचित जनजातियों के अनुपात में वृद्धि देखी गई है। देश की जनसंख्या में उनका हिस्सा 1961 में 6.9 प्रतिशत था जो 2011 में बढ़कर 8.6 प्रतिशत हो गया। लेकिन विकास के विभिन्न पैमानों पर देश के अन्य समुदायों की तुलना में अनुसूचित जनजातियों की सामाजिक और आर्थिक प्रगति कम रही है। हमारे संविधान में अनुसूचित जनजातियों के हितों की रक्षा के लिए अनेक प्रावधान किए गए हैं। इस आलेख में हम इन प्रावधानों के साथ ही अनुसूचित जनजातियों के कल्याण के लिए सरकारी रणनीतियों, नीतियों और कार्यक्रमों की समीक्षा करेंगे।
सांविधानिक प्रावधान - भारत के संविधान निर्माताओं ने अनुसूचित जनजातियों की विशेष जरूरतों को समझते हुए उनके हितों की रक्षा के लिए कुछ खास प्रावधान किए हैं। इन प्रावधानों का उद्देश्य सामाजिक और आर्थिक न्याय सुनिश्चित करने के अलावा इन समुदाय को शोषण